प्रतिभा तिवारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय

कविता

शुक्ल जी को पढ़ते हुए

शुक्ल जी को पढ़ते हुए
आभास हो रहा था,
वाल्मीकि का काव्य
शुक्ल जी के गद्य में
उतर आया है
वेदांत कहने लगे 'तत्वमसि'
का हिन्दी अनुवाद है-
'व्यक्ति की पृथक सत्ता का
लोकसामान्य भावभूमि में लीन होना'
लाओत्से बोल उठा-
विरूध्द में युध्द नहीं
सामंजस्य है
ओशो का प्रेम घनीभूत हो गया
शुक्ल जी को पढ़ते हुए
बोधिधर्मन् का योग
पतंजलि से होता हुआ
शुक्ल जी के 'अनुभूतियोग'
में समाहित हो गया
बुध्द का बुध्दत्त्व
प्रकृति की मनोहर छटा
में डूबकर पुनः
जीवन्त हुआ..
घंटों धूप में से चलते हुए,
एक घने वृक्ष की छाया में बैठकर
हृदय ने अपने को लीन किया,
सतत विश्राम की सुगन्ध से
विभोर हुआ मन..शुक्ल जी को पढ़ते हुए ।।

निन्दक नियरे राखिये....

निन्दा कितना डरावना शब्द लगता है ना..! लेकिन है नहीं। निन्दा और प्रशंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, कभी सिक्के का एक पहलू सामने होता है तो कभी दूसरा । कभी कबीर ने कहा था 'निन्दक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय। बिन पानी साबुन बिना निर्मल करत सुभाय।।' यह कहकर उन्होंने निन्दक का पद और ऊँचा कर दिया था। लेकिन सोचने वाली बात यह है कि उन्हें ऐसा कहना क्यों पडा? निन्दक यदि सचमुच बुरा होता है तो उसे पास रखने की बात आखिर उन्होंने क्यों की? निन्दक में ऐसा क्या है? विचार करने से मालूम होता है कि प्रशंसा लेने में तो हर व्यक्ति बडा गौरवान्वित और प्रसन्न अनुभव करता है, किन्तु इसी का दूसरा पहलू निन्दा सुनने में उसे तनिक भी अच्छा नहीं लगता। इस पर भी यदि कोई हिम्मत वाला व्यक्ति अपने किसी बहुत करीबी को इस दूसरे पहलू से जरा भी परिचित करा दे तब तो वह उसका पक्का दुश्मन हो गया। लगता है यही कारण है कि निन्दा हमेशा किसी तीसरे से करनी पडती है। सच भी है कौन मुसीबत मोल ले। तीसरे से निन्दा करने में बडी आसानी भी रहती है, मन का बोझ भी हल्का हो जाता है और सामने वाला व्यक्ति नाराज़ भी नहीं होता। बिल्कुल वैसे ही कि 'साँप भी मर जाये और लाठी भी ना टूटे'। वैसे जिसकी निन्दा होती है और जो निन्दा करता है दोनों की स्थिति लगभग बराबर है। क्योंक निन्दा करने वाले को तो लगता है कि 'चलो मेरी स्थिति ऐसी तो नहीं है, इससे बेहतर ही हूँ मैं'। इसी प्रकार सुनने वाले की स्थिति कुछ ऐसी होती है कि 'अच्छा तो आप ही हैं सारे गुणों वाले, बाकी तो सबमें कमियाँ ही नज़र आती हैं'। स्थिति बदलते ही कार्य का क्रम बदल जाता है लेकिन भाव वही रहता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि बडी हिम्मत का काम है 'निन्दक' को पास रखना । वैसे भी कबीर तो हिम्मत वाली बात ही कहते हैं। अब भी निन्दक स्वीकार्य नहीं है, वह भटक ही रहा है। हमारे यहाँ उल्टे विचारों को अधिक स्वीकृति मिली है, तब दुनिया उल्टी चले तो शिकायत कैसी ? कहावत है कि 'घर का भेदी लंका ढहाये' सही बात का साथ देना भी भेदी होना होता है। कैसी लीला है? तब लोगों को नहीं कहना चाहिए कि 'भलाई का ज़माना ही नहीं रहा'। हिम्मत का काम तो वही होगा कि जब आप अपनी निन्दा सुनें तो उस व्यक्ति के आस-पास रहें तभी यह बात सच्ची होगी कि 'निर्मल करत सुभाय'।